RESEARCH EXPRESSION ISSN 2456-3455 Vol. III, Issue 4 and 5, March and September 2019

# तेल, तालिबान और अमेरिका : घातक अन्तर्सम्बन्ध

डॉ. शकील हुसैन
सहायक प्राध्यापक राजनीति विज्ञान, शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर, स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दुर्ग छत्तीसगढ़

**संक्षेप**

तालिबान का उदय 1990 के दशक में अफगानिस्तान में एक धूमकेतू जैसे हुआ था। जल्दी ही उसने अफगानिस्तान के 90% इलाके पर अधिकार कर लिया। लेकिन यह केवल एक संयोग नहीं था। इसके पीछे अमेरिका की सुविचारित तेल कूटनीति थी। नवजात मध्य एशियाई गणराज्यों के पास न सिर्फ प्रचुर तेल एवं गैस भण्डार थे बल्कि ये सामरिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण थे। इसलिए अमेरिका न केवल इस क्षेत्र पर अपना अधिकार चाहता था बल्कि यहां के तेल का दोहन पाकिस्तान के कराची बन्दरगाह से करना चाहता था। क्योंकि वह मध्य एशियाई तेल दोहन से रूस और ईरान दोनों को दूर रखना चाहता था। परिणामतः अमेरिका ने अपने सनातन सहयोगी पाकिस्तान की सहायता से पहले से मौजूद मुजाहिदीनों को संगठित कर तालिबान नामक नयी शक्ति पैदा की जिससे गृहयुद्धग्रस्त अफगानिस्तान सिर्फ एक राजनीतिक शक्ति के अधीन हो सके और पाइप लाइन बिछाई जा सके। किन्तु कालान्तर में तालिबान अमेरिका के लिए भस्मासुर बन गया और कराची बन्दरगाह से मध्य एशियाई तेल दोहन की अमेरिकी योजना फलीभूत न हो सकी।

**महत्वपूर्ण शब्दावली :** अफगानिस्तान, अमेरिका, एशिया, ईरान, कन्सोरटियम, कूटनीति, कैस्पियन, तालिबान, तेल, पाकिस्तान, पाइपलाइन, नोवोरोसेयिस्क।

शीत युद्धोत्तर विश्व में दक्षिण एशिया अमेरिकी कूटनीति में अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण था। अफगानिस्तान से सोवियत संघ की विदाई और विखण्डन के बाद पाकिस्तान भी पेन्टागन के लिए अधिक महत्वपूर्ण नहीं रहा। 1977 के बाद एक बार फिर पाकिस्तान को शस्त्र हस्तान्तरण रोक दिया गया था, यहां तक कि जो ऑर्डर हो चुके थे और प्रक्रिया में थे, वो भी रोक दिए गए। 1988 से 1990 के बीच आदेशित 360 मिसाइलें, 4 अत्याधुनिक राडार, 10 लड़ाकू हेलिकॉप्टर्स, 3 बेहद खतरनाक एवं अत्याधुनिक काम्बैट एवं सर्वेलेंस विमानों की आपूर्ति प्रेसलर संशोधन के कारण प्रभावित हुई (सिपरी, 1995, पृ. 514)। पाकिस्तान जिसने 1981–82 मे F–16 लेने से केवल इसलिए मना कर दिया था कि वह उसकी पसंद का माडल नही था, वह आज स्पेयर पार्ट्स के लिए तरस रहा था। 1989 से 1993 तक स्थितियां पाकिस्तान के लिए प्रतिकूल ही रहीं। लेकिन हालात जल्द ही बदल गए और अफगानिस्तान पुनः पाकिस्तान के लिए शुभ बनकर आया तथा अमेरिकी शस्त्र और डालर दोनों पाकिस्तान को अफगानिस्तान के कारण सुलभ हो गए।

पाकिस्तान के पक्ष में यह स्थिति परिवर्तन अमेरिका की मध्य एशियाई तेल कूटनीति के कारण हुआ। सोवियत संघ के विखण्डन के बाद नवजात अजरबैजान, ताजिकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, उज़्बेकिस्तान, किर्गिस्तान आदि मध्य एशियाई राष्ट्रों का उदय हुआ। यहां 100000 मिलियन बैरल से अधिक के दोहन योग्य तेल भण्डार हैं, जिसके दोहन के लिए अमेरिकी और योरोपीय तेल कम्पनियां लालायित हो गयीं। इनमे प्रमुख अमेरिकन कम्पनियां थीं मोबिल–Mobil, चेवरान–Cheveron, यूनोकाल–Unocal, टेक्सको–Texaco तथा ब्रिटेन की ब्रिटिश पेट्रोलियम, ब्रिटिश गैस, इटली की एजिप, फ्रांस की टोटल, एवं नार्वे की स्टेट आयल आदि प्रमुख थीं (सिपरी, 1995, पृ. 213)। तेल के अतिरिक्त भी यह क्षेत्र सामरिक दृष्टि से भी अमेरिका के लिए महत्वपूर्ण था। ये देश आणविक शस्त्र सम्पन्न थे किन्तु बेहद गरीब थे। अतः अमेरिका जल्दी ही अपने प्रभाव का विस्तार इस क्षेत्र में कर लेना चाहता था। परिणामतः उसने डालर डिप्लोमेसी के तहत आर्थिक और सामरिक सहायता इन देशों को जारी रखी। 1992 से 2003 तक लगभग 3000 मिलियन डालर की आर्थिक सहायता इस क्षेत्र को अमेरिका ने दी (ओलिकर एवं डेविड, 2005, पृ. 14)। वस्तुतः यह क्षेत्र अमेरिका के दो शत्रु देशों के प्रभाव क्षेत्र में रहा था। यह अभी भी रूस से "स्वतंत्र देशों के राष्ट्रकुल" के नाम से जुड़े हुए थे। दूसरे ईरान से इनके प्राचीन धार्मिक–सांस्कृतिक सम्बन्ध थे। सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण इस क्षेत्र को अमेरिका इन दोनों के प्रभाव से मुक्त रखना चाहता था। फलतः अमेरिकी कूटनीति में यह क्षेत्र महत्वपूर्ण हो गया और इस इलाके का दरवाज़ा अमेरिका के लिए एक ही था, अफगानिस्तान और पाकिस्तान। यहीं से तालिबान के उद्भव की पटकथा तैयार होती है और पाकिस्तान के अच्छे दिन अमेरिकी विदेश नीति में फिर से प्रारम्भ हुए।

* Corresponding Author: alssplato@gmail.com • 9424275616

## मध्य एशियाई तेल कूटनीति तथा ईरान एवं रूस

मध्य एशियाई तेल कूटनीति के तीन पक्ष थे (हुसैन, 2017, पृ. 14)।

1. अमेरिका और उसके नाटो सहयोगी
2. रूस
3. ईरान

इसमे मुख्य समस्या इस क्षेत्र के तेल गैस के परिवहन मार्ग को लेकर थी क्योंकि ये सभी देश भूआवेष्ठित–Land Locked हैं। अतः इन देशों से नजदीकी बन्दरगाह तक पाइप लाइन बिछाना और सुरक्षित परिवहन एक महत्वपूर्ण प्रश्न था, साथ ही तेल परिवहन से करोड़ों डालर वार्षिक का राजस्व भी पड़ोसी देशों को मिल सकता था। फलतः परिवहन मार्ग को लेकर तीनों पक्षों की अपनी–अपनी योजनाएं थीं (हुसैन, 2017 पृ. 15)।

1. रूस की योजना यह थी कि इस क्षेत्र का तेल एवं गैस परिवहन उसके द्वारा पहले से स्थापित मार्ग से हो। वास्तव में इस क्षेत्र का तेल परिवहन 1991 से पूर्व रूसी गणराज्य के नोवोरोशियिस्क बन्दरगाह तथा पोटी बन्दरगाह (अब जार्जिया) से काला सागर में निकाला जाता था। क्योकि ये सभी राज्य पूर्व सोवियत गणराज्य थे, अतः यहां स्थापित व्यवस्था पहले से विद्यमान थी। परिणामतः स्वाभाविक रूप से रूस अब भी यही चाहता था कि पहले वाली व्यवस्था बनी रहे जिससे न केवल उसे करोड़ों डालर सालाना का राजस्व प्राप्त हो बल्कि उसका प्रभाव भी बना रहे। निश्चित रूप से अमेरिका यह बिल्कुल भी नहीं चाहता था। इस समय रूस आर्थिक रूप से बहुत कमजोर था और स्वयं अमेरिकी सहायता पर निर्भर था अतः वह बहुत अधिक प्रतिरोध की स्थिति में नहीं था जिसके कारण अमेरिका इस स्थिति का दोहन कर लेना चाहता था और उसने मध्य एशियाई देशों को सहायता देकर ऐसा किया भी।
2. ईरान की इच्छा थी कि मध्य एशियाई तेल और गैस परिवहन ईरानी पाइप लाइनों से होकर फारस की खाड़ी से निकाला जाए। यह मार्ग सबसे छोटा, आसान, सुरक्षित और सस्ता था। लेकिन यह असम्भव था क्योंकि ईरान को अमेरिका आतंकवादी देश और शत्रु देश मानता था, साथ ही अमेरिका को ईरान का सबसे बड़ा शत्रु माना जाता है इसलिए ईरान के लिए भी अमेरिका के साथ जाना असम्भव था। इसके अतिरिक्त यहूदी वर्चस्व वाली तेल कम्पनियों का ईरान मे काम करना मौलिक रूप से असम्भव था, साथ ही अमेरिका ईरान की नाकेबन्दी चाहता था जिससे ईरान को एक डॉलर की भी अतिरिक्त आय न हो। परिणामतः अमेरिकी नीति रूस और ईरान को बाइपास कर तेल एवं गैस परिवहन की बनी।
3. अमेरिकी नीति निर्माताओं के सामने तीन विकल्प थे:–
   (अ) अजरबैजान का तेल जार्जिया होकर जार्जिया के सुपसा एवं पोटी बन्दरगाह से कालासागर में निकाला जाए। यह पाइप लाइन पहले से मौजूद थी और रूस के प्रभाव में थी फलतः रूस सहमत था। लेकिन अमेरिका को यह नापसन्द था। अतः इसका विकल्प यह था कि अजरबैजान से आर्मेनिया होकर एक ट्रांस टर्किश (तुर्की पार करके) पाइपलान बने जो तुर्की के दक्षिणी तट पर भूमध्य सागर में सेहान बन्दरगाह से निकाला जाए। तुर्की चूंकि नाटो का सदस्य था अतः यह मार्ग अमेरिकी प्रभाव वाला और सुरक्षित था। लेकिन लम्बा और महंगा था।
   (ब) एक ट्रांस–काकेशियन पाइपलाईन का निर्माण किया जाए जिसकी लम्बाई लगभग 2500 से 3000 किमी होगी। यह कैस्पियन सागर के पूर्वी तटीय देशों तुर्कमेनिस्तान, कजाकिस्तान, उज़्बेकिस्तान और ताजिकिस्तान का तेल तुर्की के सेहान से निकाला जाए। लेकिन यह बेहद लम्बा, महंगा, और अधिक समय लेने वाला था क्योंकि यह बनायी जानी थी (हुसैन, 2017 पृ. 16)। अतः यह योजना भी अव्यावहारिक थी।
   (स) रूस और ईरान को पूरी तरह अलग रखकर एक नया और छोटा मार्ग सम्भव था। यह 1271 किमी का अपेक्षाकृत छोटा और कम खर्चीला मार्ग था तुर्कमेनिस्तान, अफगानिस्तान और पाकिस्तान होकर कराची बन्दरगाह से अरब सागर में निकाला जाए। अमेरिकी नीति निर्माताओं को यह विकल्प अधिक व्यावहारिक लगा। इसके लिए आवश्यक था कि अफगानिस्तान मे पाकिस्तान जैसी अमेरिकी समर्थक सरकार हो और दोनों देशों पर अमेरिकी नियंत्रण हो। तालिबान के उदय की शुरुआत यहीं से होती है। (हुसैन, 2017)

## तालिबान का उदय

1979 से 1989 तक दस वर्षों तक सोवियत सेनाओं से अफगान मुजाहिदीन अमेरिकी शस्त्रों से ही लड़े थे और विजय पायी थी। इन्हे सारी सहायता पेन्टागन CIA और पाकिस्तानी खुफिया एजेन्सी ISI के द्वारा उपलब्ध करा रहा था। अमेरिका लगभग 630 मिलियन डॉलर वार्षिक की सहायता इस कार्य के लिए पाकिस्तान को दे रहा था और इतनी ही लगभग सऊदी अरब से मिल रही थी (कोलिन

प्राइस, 2012 पृ. 54)। पाकिस्तानी खुफिया एजेन्सी आई एस आई को जनरल जिया ने इस कार्य के लिए और मजबूत बनाया था तथा उसके स्टाफ की संख्या 2000 (1978 मे) से बढ़ाकर 1988 तक 40000 कर दी और इसकी कमान एक पख्तून जनरल अख्तर अब्दुल रहमान को सौंपी (कोलिन प्राइस 2015 पृ. 54,)। रहमान ने अफगान सीमा पर अनेक ट्रेनिंग कैम्प स्थापित किए जहां 10 दिन से लेकर 90 दिन तक का सैन्य प्रशिक्षण मुजाहिदीनों को दिया जाता था। 1988 तक आई एस आई ने लगभग 80000 से 90000 तक मुजाहिदीन प्रशिक्षित किए थे जिनमे तालिबान का संस्थापक मुहम्मद उमर या मुल्ला उमर भी शामिल था (ब्रूस रिडल : डेडली इम्ब्रेस, 24)। साथ ही इन मुजाहिदीनों में ओसाम बिन लादेन नामक वह युवा भी था जो कालान्तर में अमेरिका का सबसे बड़ा शत्रु और आतंकवादी बना। इस प्रकार अमेरिका पाकिस्तान और अफगान मुजाहिदीनों के मध्य एक स्थापित नेटवर्क पहले से विद्यमान था। अमेरिका इसी के सहारे अपनी कठपुतली सरकार अफगानिस्तान में खड़ा करना चाहता था। लेकिन इसमें एक कठिनाई थी। सोवियत सेनाओं की वापसी के बाद 1990 से 1993 के बीच अफगानिस्तान में एक प्रकार का पावर वैक्यूम बन गया था, इसके अलावा वहां अमेरिका प्रदत्त हथियारों का भारी जखीरा विद्यमान था। परिणामतः विभिन्न जनजातीय पहचान वाले अफगान गुट संघर्षरत हो गए और अफगानिस्तान गृहयुद्ध में फंस गया।

पाइपलाइन निर्माण के लिए यह जरूरी था कि न केवल अफगानिस्तान में शांति हो, सम्पूर्ण अफगानिस्तान पर एक ही गुट का शासन हो और वह अमेरिका समर्थित हो। इसके लिए जिस गुट की पहचान की गयी वह गुट सऊदी अरब और यू ए ई समर्थित वहाबी इस्लाम का पोषक गुट था। इस गुट को नाम दिया गया तालिबान। इस गुट को स्थापित करने के लिए कन्दहार के मुजाहिद मुल्ला उमर को चुना गया, वह आई एस आई का प्रिय था। इसके अलावा वह वहाबी इस्लाम के सिद्धान्तों का गहरा जानकार था जिसके कारण वह सऊदी अरब की भी पहली पसन्द था। वहाबी विद्वता के कारण ही उसे मुल्ला उमर के नाम से जाना जाता था। यह याद रखना जरूरी है कि इस सम्पूर्ण कार्य को सऊदी अरब की वित्तीय और राजनीतिक सहायता प्राप्त थी, इसी कारण तालिबान सरकार को सऊदी अरब ने तत्काल मान्यता प्रदान की थी।

सोवियत सेनाओ की 1989 में वापसी के बाद भी अफगान शासक नजीबुल्ला को अमेरिका ने आगे की रणनीति बनने तक बनाए रखा। 1992 मे रूस ने कजाकिस्तान और ओमान के साथ मिलकर सीपीसी– "कैस्पियन पाइपलाइन कंजोर्टियम" की स्थापना की और पूर्व स्थापित मार्ग से नोवोरोसियिस्क बन्दरगाह (रूस) से तेल निकालने के लिए मजबूत शुरुआत कर दी। परिणामतः पेन्टागन ने अपनी पाइप लाइन योजना पर तेजी से काम आगे बढ़ाया और तालिबान नामक निर्णायक शक्ति इसके लिए पैदा की गयी। फलतः अप्रैल 1992 को नजीबुल्ला की नृशंस सार्वजनिक हत्या हुई तथा गृहयुद्ध और पाक तीव्र हुआ एवं प्रशिक्षित लड़ाकों को गृहयुद्ध में सक्रिय कर दिया गया। सितम्बर 1994 में औपचारिक रूप से तालिबान का गठन मुल्ला उमर के नेतृत्व में किया गया और नवम्बर 1994 तक तालिबान ने कन्दहार पर अधिकार कर लिया, पाक सेना इस कार्य में पूर्ण सहयोग कर रही थी। अफगान मुजाहिदीन गुरिल्ला युद्ध के लिए प्रशिक्षित किए गए थे, उन्हें परम्परागत युद्ध के बड़े हथियारों का संचालन नहीं आता था, जबकि तालिबान अब परम्परागत बड़ी लड़ाई लड़ रहा था क्योंकि पेन्टागन कैस्पियन कन्जोर्टियम के गठन के कारण जल्दबाजी में था। अतः तालिबान को टैंकों और विमानों के संचालन मे पाकिस्तानी सेना सहायता कर रही थी (कोलिन प्राइस, 2012 पृ. 57)। इसके अलावा पाकिस्तान ने वहाबी तालिबान को वैचारिक सहायता के लिए 8000 आधिकारिक और 25000 से अधिक अनाधिकारिक मदरसे स्थापित किए और दारूल उलूम हक्कानिया नामक इदारा (स्कूल) स्थापित किया जिसने अनगिनत वहाबी मौलवी तैयार किए (रूबिन, 2002 पृ. 13)। 1996 तक तालिबान ने राजधानी काबुल सहित 12 अफगान प्रान्तों पर अधिकार कर लिया था। लेकिन जल्दी ही पेन्टागन को समझ में आ गया कि तालिबान अमेरिकी अपेक्षानुसार कठपुतली बनने के लिए राजी नहीं है। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान में जो वहाबी मदरसों का जाल जनरल जिया के जमाने में बिछाया गया था उससे कट्टरवादी मुल्लाओं की नयी खेप तैयार हो रही थी जो मौलिक रूप से स्वभावतः धर्मान्ध और कट्टर बहाबी थे, जो सदैव युद्ध के लिए न केवल तत्पर थे बल्कि नियंत्रणहीन भी थे। सम्भवतः इसी कारण रूस रिडल जनरल जिया उल हक को "वैश्विक इस्लामिक जिहाद का पितामह" मानते हैं ( ब्रूस रिडल, 2002 पृ. 24)। तालिबान के अमेरिकी हितों के प्रतिकूल जाने की दो सम्भावित वजहें और थीं। पहला था 1991 के खाड़ी युद्ध के बाद वैश्विक स्तर पर मुस्लिम जगत में अमेरिका विरोधी वातावरण बन रहा था, कट्टरवादी विचारधारा का होने के कारण तालिबान इस विरोध का प्रतिनिधि बना। दूसरे 1988 में जनरल जिया की अचानक विमान दुर्घटना मे मौत ने भी यह धारणा बनायी कि अमेरिकन किसी के दोस्त नहीं हैं। अतः 1996 के बाद तालिबान अमेरिका विरोधी होता गया और पेन्टागन के भी यह समझ में आ गया कि उनकी योजना फलीभूत नहीं हो रही है।

### रूसी कूटनीति और अमेरिकी योजना की विफलता

1996 तक अफगानिस्तान के अधिकांश प्रांतों और महत्वपूर्ण शहरों पर तालिबान का अधिकार हो गया था। लेकिन रूस को अमेरिकी योजना की भनक लग चुकी थी। अतः रूस ने मध्य एशिया एवं अफगान सीमा पर ताजिक और उज़्बेक विद्रोहियों को तालिबान के विरुद्ध सहायता प्रदान की, और इस कार्य में उसे ईरान का भी सहयोग प्राप्त हुआ। परिणामतः अफगानिस्तान की ताजिस्तान से लगने वाली सीमा पर ताजिक मूल के अफगान मुजाहिद अहमद शाह मसूद के नेतृत्व में और उज़्बेकिस्तान से लगने वाली सीमा पर उज़्बेक मूल के अब्दुल रशीद दोस्तम के नेतृत्व में तालिबान विरोधी गुट खड़ा कर एक बड़ा बफर स्टेट बना दिया जिसमें अफगानिस्तान का लगभग

बीस प्रतिशत सीमावर्ती क्षेत्र आता था। इससे मध्य एशिया से अफगानिस्तान होकर पाकिस्तान तक की पाइप लाइन योजना असफल हो गयी। क्योंकि ताजिकिस्तान – उज़्बेकिस्तान – अफगान सीमा पर तालिबान एवं पाकिस्तान विरोधी ताकतों का अधिकार था जो अमेरिकी योजना के विरुद्ध थे।

तालिबान भी तेजी से अमेरिका विरोधी बन रहा था और इसी समय 1996 मे ओसामा बिन लादेन अफगानिस्तान लौटा, जो सूडान से निष्कासित कर दिया गया था (कोलिन प्राइस , 2005 पृ. 57)। उसके साथ लगभग 2000 खतरनाक लड़ाके भी थे (रूबिन, 2002 पृ. 14)। ओसामा तब तक घोषित अमेरिका विरोधी बन चुका था और अमेरिकी दूतावासों पर फिदायीन हमलों की जिम्मेदारी उस पर थी। अतः ओसामा को पनाह देने के साथ ही यह स्पष्ट हो गया कि तालिबान दक्षिण एशिया मे अमेरिकी हितों का वाहक नहीं बल्कि विरोधी है जिसकी चरम परिणति 9/11 के अमेरिकी हमलों के रूप में हुई।

## निष्कर्ष

इस प्रकार स्पष्ट है कि तालिबान का जन्म अमेरिका की मध्य एशियाई तेल कूटनीति के कारण हुआ जो कि न केवल असफल रही बल्कि तालिबान भविष्य में अमेरिका के लिए ओसामा बिन लादेन के अलकायदा के साथ मिल कर अमेरिका के लिए सबसे बड़ा सिरदर्द बन गया जिससे निबटने के लिए अमेरिका को न केवल अरबों डालर खर्च करने पड़े बल्कि 9/11 के रूप मे सबसे आतंकवादी हमला भी झेलना पड़ा।

1996 तक अमेरिकी तेल कम्पनियों ने पाइप लाइन का प्रयास छोड़ दिया और रूस के कैस्पियन पाइपलाइन कन्जोर्टियम मे रूचि दिखानी शुरू की और शीघ्र ही इसका हिस्सा बन गए। कजाकिस्तान से रूस के नोवोरोसियिस्क तक की पाइप लाइन मे चेवेरान, मोबिल, डच शेल, रोसनेफ्ट, आदि ने निवेश स्वीकार कर लिया। किन्तु यह प्रक्रिया लम्बी चली और पहला तेल टैंकर नोवोरोयिस्क से 2001 में भरा जा सका। सी पी सी – कैस्पियन पाइपलाइन कन्जोर्टियम में 8 तेल कम्पनियों के 50% शेयर हैं जो मूलतः उत्पादन से सम्बन्धित हैं, (चेवेरान कैस्पियन पाइपलान कम्पनी – 15% , लूकार LUKAR co- B V- 12.5%, मोबिल कैस्पियन पाइपलाइन – 7.5%, रोसनेफ्ट शेल कैस्पियन वेन्चर्स – 7.5%, ईएनआई इण्टरनेशनल – 2%, बीजी ओवरसीज होल्डिंग्स – 1.75%, कजाकिस्तान पाइपलाइन वेन्चर्स – 1.75%)। और शेष 50% शेयर रूस, कजाकिस्तान और सीपीसी के है (रूस – 24%, कजाकिस्तान – 19%, सीपीसी – 7%)। यह पाइपलाइन न केवल आज सफल है बल्कि रूस की सफल कूटनीति की निशानी भी है।

तालिबान को अमेरिका ने पैदा किया लेकिन यह अचानक नहीं हुआ था बल्कि यह 1980 के दशक की उस अमेरिकी नीति का परिणाम था जिसे अमेरिका ने सऊदी अरब के सहयोग से ईरान और सोवियत संघ के विरुद्ध अफगानिस्तान मे अपनाया था। 1979 मे ईरान में धार्मिक क्रांति के बाद अमेरिका का बेहद विश्वस्त सहयोगी ईरान उसका विरोधी हो गया और इसी वर्ष अफगानिस्तान मे सोवियत हस्तक्षेप हुआ। साम्यवाद की धर्म विरोधी विचारधारा और ईरान के शिया इस्लाम के विरुद्ध अमेरिका ने सऊदी अरब की वहाबी–सलाफी इस्लाम को अफगानिस्तान मे प्रतिरोधी विचारधार के रूप में प्रयोग किया जिसमे सऊदी अरब ने वित्तीय और साधनात्मक सहयोग भारी मात्रा में किया और पाकिस्तान ने इस मुफ्त की सहायता को हाथो–हाथ लिया। यही धार्मिक कट्टरवाद आज अमेरिका और पाकिस्तान दोनों के लिए नासूर बन गया है।

अमेरिका की गलत अफगान नीति और उससे उत्पन्न तालिबान जैसे भस्मासुर का जन्म भारत के लिए भी दूरगामी परिणामों वाला एवं बहुत अधिक अहितकर रहा। 1992 से अफगान गृहयुद्ध गति पकड़ता है और कश्मीर में आतंकवाद भी तीव्र होता है। तालिबान के जन्म के बाद कश्मीर मे आतंकवाद और गम्भीर होता गया। आई एस आई ने तालिबानी आतंकवादियों का कश्मीर में प्रयोग किया। पाकिस्तानी विद्वान आएशा सिद्दीकी आगा ने इस बात पर विस्तार से प्रकाश डाला है कि किस प्रकार अफगान मुजाहिदीनों के लिए प्राप्त हथियारों का काफी बड़ा हिस्सा पाकिस्तान चोरी कर लेता था और जब अमेरिकी कांग्रेस की टीम इस आरोप की जांच के लिए आने वाली थी तब सम्बन्धित ओझिरी (रावलपिण्डी) आयुध डिपो में आग लग गयी। (आएशा, 2002 पृ. 150)। पाकिस्तान इन चोरी के हथियारों का प्रयोग भारत के विरुद्ध आतंकवादी गतिविधियों में करता रहा है। तालिबानी मदरसों से ही अजहर मसूद और हाफिज सईद जैसे कुख्यात आतंकवादी पैदा होते रहे हैं। अतः तेल अमेरिका और पाकिस्तान का गठजोड़ और उसके तालिबान जैसे भयानक परिणाम हमारे देश के लिए भी घातक सिद्ध हुए हैं।

2001 से अब तक 18 वर्षों के दमन और युद्ध के बाद भी अफगानिस्तान से तालिबान खत्म नहीं हुआ और अब अमेरिका वहां से सुरक्षित व सम्मानजनक तरीके से निकलने के रास्ते ढूंढ रहा है। वहीं पाकिस्तान को भी शेर की सवारी करने की भारी कीमत नित नए आतंकवादी हमलों के रूप मे चुकानी पड़ रही है। सहायता में दिए गए हथियार जल्दी समाप्त हो सकते हैं। लेकिन रोपी गयी विचारधारा को समाप्त होने में शताब्दियां लग जाती हैं। ऐसी ही कट्टरवादी वहाबी–सलाफी विचारधारा अमेरिका ने सऊदी अरब की सहायता से रोप दी है जिसका दुष्परिणाम सारा विश्व भुगत रहा है, और आज भी अमेरिका अपने ही पैदा किए हुए भस्मासुर से वार्ता करने पर मजबूर है जिससे कि अमेरिका सुरक्षित अफगानिस्तान से निकल सके।

## संदर्भ सूची


1. स्टाकहोम इण्टरनेशनल पीस रिसार्च इन्स्टीट्यूट ईयरबुक, 1995 पृ. 514.
2. तदैव पृ. 213.
3. ओलीवर एवं डेविड – यू एस इण्टरेस्ट इन सेन्ट्रल एशिया : पालिसी प्राइआरिटिज एण्ड मिलिट्री रूल्स। रैण्ड रिपोर्ट 2005, पृ. 14.
4. हुसैन शकील – चीन पाक अवैध शस्त्र व्यापार और भारतीय सुरक्षा। शिक्षावृत प्रकाशन, रायपुर 2017, पृ. 14.
5. तदैव पृ. 15.
6. तदैव पृ. 16.
7. प्राइस कोलिन – पाकिस्तान : ए पैथोस आफ प्राब्लम्स ग्लोबल सिक्योरिटी स्टडीज, विण्टर 2012 वोल्यूम 3, इश्यू 1, पृ. 54.
8. तदैव पृ. 57.
9. रिडल ब्रूस – डेडली इम्ब्रैस : पाकिस्तान अमेरिका एण्ड द फ्यूचर आफ ग्लोबल जेहाद। वाशिंगटन डी सी। द ब्रूकिंग इन्स्टीट्यूट 2011 पृ. 24.
10. रूबिन – हू इज रिसपॉन्सिबल फार तालिबान? मिडिल ईस्ट रिव्यू आफ इण्टरनेशनल अफेयर्स 6.1 2002, पृ. 13. ईबीएससीओ वेब 13 अगस्त 2011.
11. तदैव पृ. 14.
12. आगा सिद्दिकी आएशा – पाकिस्तान आर्म्स प्रोक्योरमेन्ट एण्ड मिलिट्री बिल्डअप। न्यूयार्क, 2000, पृ. 150.